



दैनिक जागरण

Date: 08-09-26

फिर सवालों के घेरे में न्यायपालिका

राजीव शुक्ला, (लेखक कांग्रेस के राज्यसभा सदस्य हैं)



न्यायपालिका लोकतंत्र का वह हिस्सा है, जिससे आम आदमी सबसे मुश्किल समय में न्याय की उम्मीद करता है। इसलिए अदालतों के फैसले केवल कानूनी नहीं होते, वे समाज में न्याय के प्रति विश्वास को भी मजबूत करते हैं। यदि उच्चतर अदालतों में भी भ्रष्टाचार सामने आएगा तो लोगों का विश्वास कमजोर होगा। इस समय न्यायपालिका फिर से विवादों के घेरे में है। जज ही जज पर आरोप लगा रहे हैं। न्यायपालिका की स्वतंत्रता जितनी जरूरी है, उसकी प्रतिष्ठा बनाए रखना भी उतना ही जरूरी है। मुख्य न्यायाधीश जस्टिस सूर्यकांत का कहना न्यायिक प्रक्रिया के मूल सिद्धांतों के अनुरूप ही है कि किसी जज के खिलाफ लगाए

गए आरोपों को तब तक आखिरी नहीं माना जा सकता, जब तक संबंधित जज को अपना पक्ष रखने का मौका न मिले।

राजस्थान हाई कोर्ट के कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश जस्टिस संजीव प्रकाश शर्मा के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट के जज न्यायमूर्ति संदीप मेहता द्वारा लिखे गए पत्रों के मामले में भी उन्होंने नियमों के सही पालन पर जोर दिया। किसी जज के खिलाफ आरोप कितने ही गंभीर क्यों न हों, यदि न्यायपालिका खुद आरोप और निष्कर्ष के बीच का अंतर मिटा दे, तो वह उस ढांचे को ही कमजोर करेगी, जिसकी रक्षा उसे करनी है। आरोपों की जांच और तथ्यों की पड़ताल होनी चाहिए, लेकिन यह सब निर्धारित नियमों के भीतर होना चाहिए।

राजस्थान का मुद्दा इसलिए महत्वपूर्ण है कि शिकायत करने वाले खुद सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस हैं। जस्टिस संदीप मेहता ने 2, 10 और 17 अगस्त को लिखे पत्रों में राजस्थान हाई कोर्ट के कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश पर प्रशासनिक अधिकारों के कथित दुरुपयोग, मामलों की सूची में हस्तक्षेप और पक्षपात जैसे गंभीर आरोप लगाए। इन आरोपों की सच्चाई का फैसला तो जांच के बाद ही हो सकता है, लेकिन आखिर ये पत्र सार्वजनिक कैसे हुए? यदि किसी जज के खिलाफ शिकायत भेजी जाती है तो उसकी गोपनीयता का भी अपना महत्व है। शिकायत सार्वजनिक होना और शिकायत पर कार्रवाई होना दो अलग-अलग बातें हैं। कार्रवाई होनी चाहिए, लेकिन यह भी पता लगना चाहिए कि पत्र सार्वजनिक कैसे हुए। इसका अर्थ यह नहीं कि किसी गंभीर शिकायत को दबा दिया जाए, बल्कि इसके उलट शिकायत की निष्पक्ष जांच और उसकी प्रक्रिया की गोपनीयता, दोनों साथ-साथ चलनी चाहिए।

न्यायपालिका के भीतर जवाबदेही का अर्थ यह नहीं हो सकता कि संस्थागत प्रक्रिया शुरू होने से पहले ही पूरा विवाद सार्वजनिक बहस का जरिया बन जाए। आज न्यायपालिका के सामने एक और चुनौती है कि उसकी टिप्पणियों और

फैसलों को देखने का तरीका बदल रहा है। अदालत में सुनवाई के दौरान जज कई बार सवाल पूछते हैं, टिप्पणी करते हैं या किसी विषय पर अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। ये टिप्पणियां हमेशा अंतिम निर्णय का हिस्सा नहीं होतीं। किसी टिप्पणी का छोटा सा वीडियो कुछ ही मिनटों में डिजिटल मीडिया पर पहुंच सकता है। इसके बाद लोग अपने-अपने हिसाब से उस पर टिप्पणी करने लगते हैं, जबकि संभव है कि अंतिम फैसले में अदालत ने बिल्कुल अलग नजरिया अपनाया हो। कई बार अदालत की टिप्पणियों के कारण नेताओं को भी ऐसे शब्द सुनने पड़ते हैं, जिनकी शायद आवश्यकता नहीं होती। इसी तरह कई बार एक पक्ष फैसला आने से पहले ही न्यायाधीश की प्रशंसा करने लगता है और दूसरा उस पर सवाल खड़े करने लगता है। लोकतांत्रिक समाज के लिए यह स्थिति शुभ नहीं है।

फैसले से असहमति लोकतंत्र में स्वाभाविक है। सत्तापक्ष, विपक्ष से लेकर आम नागरिक किसी फैसले से असहमत हो सकता है। कानून के दायरे में फैसले की आलोचना का अधिकार होना चाहिए, लेकिन आलोचना और न्यायपालिका की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाने वाली भाषा के बीच अंतर बनाए रखना जरूरी है। समाज, राजनीतिक दलों, मीडिया और डिजिटल मीडिया को अपनी भूमिका समझनी होगी, लेकिन इसी के साथ न्यायपालिका को भी अपनी कार्यप्रणाली पर गंभीरता से विचार करना होगा। समय आ गया है कि न्यायिक संस्थाओं की प्रतिष्ठा बचाने के लिए व्यापक विचार-विमर्श हो। वर्चुअल-हाइब्रिड सुनवाई की व्यवस्था आज न्याय तक पहुंच आसान बनाने का माध्यम है। इसलिए इसे पीछे नहीं ले जाया जा सकता, लेकिन यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सुनवाई के दौरान मौखिक टिप्पणियों और अंतिम न्यायिक निर्णय के बीच का अंतर आम लोगों तक स्पष्ट रूप से पहुंचे।

आम नागरिक का न्यायपालिका से पहला सामना निचली अदालत में होता है। यहीं से न्यायपालिका के प्रति उसकी राय बनती है। दुर्भाग्य से यह विचार काफी मजबूत हो चुका है कि न्यायपालिका के निचले स्तर पर भ्रष्टाचार है। यह कहना गलत होगा कि हर निचली अदालत या हर न्यायिक अधिकारी भ्रष्ट है, लेकिन शिकायतों और धारणा को नजरअंदाज करना भी सही नहीं होगा। न्यायपालिका की प्रतिष्ठा सुप्रीम कोर्ट के बड़े संवैधानिक फैसलों से जितनी बनती है, उतनी ही उस व्यक्ति के अनुभव से भी बनती है, जो वर्षों तक अपनी तारीख का इंतजार करता है। इसलिए न्यायिक सुधार की चर्चा केवल शीर्ष अदालतों तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि उसे व्यापक स्तर पर ले जाया जाना आवश्यक है।

मुख्य न्यायाधीश बनने की वरिष्ठता-परंपरा में न्यायमूर्ति विक्रम नाथ का नाम है। उनके बाद बीवी नागरत्ना का नाम है। नाथ का कार्यकाल सितंबर 2027 तक और नागरत्ना का अक्टूबर 2027 तक है। न्यायमूर्ति नागरत्ना के संभावित कार्यकाल का महत्व इसलिए होगा कि वे भारत की पहली महिला मुख्य न्यायाधीश बनेंगी, लेकिन किसी के महिला होने से ज्यादा महत्वपूर्ण यह होगा कि न्यायपालिका अपने संस्थागत चरित्र को किस तरह मजबूत करती है। न्यायपालिका को न तो आलोचना से डरना चाहिए और न ही अपनी प्रतिष्ठा के प्रति लापरवाह होना चाहिए। आज लोग अदालती फैसले केवल अखबार में ही नहीं पढ़ते, बल्कि उसे वीडियो में भी देखते हैं, डिजिटल मीडिया पर चर्चा करते हैं और तुरंत प्रतिक्रिया भी देते हैं। ऐसे में न्यायपालिका के लिए सबसे जरूरी चीज है कि वह विश्वसनीयता बनाकर कैसे रखे? न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा आंतरिक पारदर्शिता, जवाबदेही, मर्यादा और संस्थागत अनुशासन से भी होती है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 08-09-26

एआई को लेकर भविष्य का डर क्यों है कम

मिहिर शर्मा



यह हैरानी की बात है कि आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) के दीर्घकालिक प्रभावों को लेकर हमारी जिंदगी अभी से चिंताओं से भरी हुई क्यों नहीं है। एआई ऐसी तकनीक है जिसका प्रभाव पहले सामने आई किसी भी तकनीक से अलग हो सकता है। इसके बावजूद, इसके संभावित असर को लेकर समाज में एक तरह की बेफिक्री दिखाई देती है।

इस अंतर की एक वजह अब कुछ हद तक समझ में आने लगी है। रोजगार और कामगारों पर एआई का असर उन तकनीकों से अलग पड़ सकता है जिन्होंने पहले दुनिया को

बदला है। भाप के इंजन से लेकर बिजली और सूचना प्रौद्योगिकी तक पिछली सभी बड़ी तकनीकी क्रांतियों ने आखिरकार मध्यम स्तर के कौशल वाले दफ्तर के काम से जुड़े पेशेवरों के लिए मानव पूंजी का महत्व बढ़ाया। यानी उनकी विशेषज्ञता और ज्ञान की मांग बढ़ी और उनके लिए नए अवसर पैदा हुए।

लेकिन एआई की स्थिति अलग दिखाई देती है। यह उन लोगों को ही बड़ी संख्या में रोजगार से बाहर करने का खतरा पैदा कर रही है जो आज मध्यम स्तर के कौशल वाले दफ्तरों में काम करने वाले कामगार हैं। अगर ऐसा बड़े पैमाने पर हुआ, तो इसका असर केवल रोजगार तक सीमित नहीं रहेगा। इससे समाज की मौजूदा सामाजिक और आर्थिक संरचना भी पूरी तरह बदल सकती है।

कुछ साल पहले तक आमतौर पर यह चिंता जताई जाती थी कि रोबोटिक्स के बढ़ते इस्तेमाल से कारखानों में काम करने वाले कुशल मजदूरों का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा। निश्चित रूप से आज उत्पादन की समान मात्रा के लिए पहले की तुलना में कम श्रमिकों की जरूरत पड़ती है। लेकिन अगर दुनिया में चीन को भी शामिल करके देखा जाए तो यह कहना मुश्किल है कि कारखानों में काम करने वाले लोगों की कुल संख्या वास्तव में घट गई है।

संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (यूनिडो) के आंकड़ों के मुताबिक, दुनिया में विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार 2015 में 44.8 करोड़ से बढ़कर 2022 में 47.7 करोड़ लोगों तक पहुंच गया। इतना ही नहीं, कुछ क्षेत्रों में तो कुशल कारखाना श्रमिकों, पर्यवेक्षकों और फोरमैन की भारी कमी दिखाई दे रही है। सेमीकंडक्टर, धातु उद्योग और दवा निर्माण जैसे विशेष क्षेत्रों में ऐसे कुशल कर्मचारियों की मांग बहुत अधिक है। दक्षिण कोरिया की कंपनी एसके हाइनिक्स द्वारा अपने कर्मचारियों को 5 लाख डॉलर से अधिक का बोनस दिए जाने की खबर भी इस स्थिति की ओर इशारा करती है। इससे पता चलता है कि कुछ अत्यधिक कुशल औद्योगिक कामगारों की विशेषज्ञता आज भी कितनी मूल्यवान है।

इसी वजह से फिलहाल तस्वीर कुछ उलटी दिखाई देती है। तकनीक के कारण ही दफ्तरों में काम करने वाले कर्मचारी, शारीरिक श्रम करने वाले अपने कामगार सहकर्मियों की तुलना में अधिक खतरे में नजर आ रहे हैं। तकनीकी बदलाव का यह असर असामान्य है। अर्थशास्त्रियों का अब तक का अध्ययन बताता है कि तकनीकी प्रगति आमतौर पर कुशल कामगारों के पक्ष में रही है।

एआई का संभावित प्रभाव एक और प्रभावशाली वर्ग, रचनात्मक क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए भी अभूतपूर्व हो सकता है हालांकि इनकी संख्या कम है। इससे पहले की तकनीकी क्रांतियों ने रचनात्मक लोगों के दायरे को बढ़ाया था। प्रिंटिंग प्रेस ने लेखकों के लिए लेखन से जीविका कमाने का रास्ता खोला। बिजली और जनसंचार माध्यमों ने उन्हें राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर लोगों की सोच और विचारों को प्रभावित करने की अभूतपूर्व क्षमता दी। इसके बाद संचार क्रांति ने ऐसी दुनिया बनाई जिसमें दुनिया के किसी भी कोने से कोई व्यक्ति अपनी पहचान बना सकता था और एक प्रभावशाली 'इन्फ्लूएंसर' बन सकता था।

तब क्या होगा जब एआई इन रचनात्मक लोगों से बेहतर संगीत तैयार करने लगेगा या उनसे बेहतर लघु फिल्में बनाने लगेगा? जिन लोगों में अपना कोई खास सौंदर्य बोध या रचनात्मक समझ नहीं है उनके लिए एआई से तैयार सामग्री पहले ही मनोरंजन और जानकारी का एक नया साधन बन रही है और परेशानी की बात यह है कि फेसबुक पर हमारे ऐसे दोस्तों की संख्या कम नहीं है। उनके लिए वह धीरे-धीरे उन पुराने संदेशों, बार-बार भेजे जाने वाले मजाकिया पोस्ट और दोहराए जा चुके मीम्स की जगह ले रही है जो अब तक उनके मनोरंजन का जरिया थे। जल्द ही एआई रचनात्मक उपलब्धियों की सीढ़ी पर और ऊपर चढ़ने लगेगा। स्मॉटिफाई और दूसरे म्यूजिक स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म पर अब यह पहचानना मुश्किल होता जा रहा है कि कोई संगीत एआई ने बनाया है या संगीत उद्योग में तैयार किया गया सामान्य, जरूरत से ज्यादा सजाया-संवारा हुआ संगीत है। एआई से बनी फिल्में अभी पूरी तरह सामने आने में कुछ समय लेंगी। हालांकि इलॉन मस्क ने वादा किया है कि इस साल के अंत तक, पूरी तरह एआई से बनी ओडिसी पर आधारित फिल्म लेकर आएंगे। हालांकि आज भी यूट्यूब पर एआई से बनाए गए ढेरों फिल्मी ट्रेलर देखे जा सकते हैं।

इनमें से लगभग सभी बेहद खराब और देखने लायक नहीं हैं। लेकिन कुछ ट्रेलर सचमुच अच्छी गुणवत्ता वाले भी हैं। इनमें कुछ शानदार पैरोडी भी शामिल हैं। एक ऐसा डीएआई का इस्तेमाल करने वाला रचनाकार लोकप्रिय फिल्मों, जैसे हैरी पॉटर और लॉर्ड ऑफ द रिंग्स के ट्रेलर को बड़ी कुशलता से नए रूप में तैयार करता है। वह कभी उन्हें उत्तर कोरिया के भ्रामक प्रचार वाली फिल्मों की शैली में बनाता है तो कभी बालेंसियागा के विज्ञापनों जैसा रूप देता है। उसके बनाए वीडियो को करोड़ों लोग देख चुके हैं।

यह संभावना अब काफी वास्तविक है कि एआई पूरे रचनात्मक उद्योग को प्रभावित करे और बड़े पैमाने पर रोजगार की दिक्कत हो जाए। इसके नतीजों पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है। एक तरफ इसका मतलब यह होगा कि भविष्य के एआई को नई सामग्री बनाने के लिए पुरानी सामग्री का ही बार-बार इस्तेमाल करना पड़ेगा। इसमें आज एआई द्वारा बनाई जा रही घटिया सामग्री भी शामिल होगी जिसे हजारों लोग देख रहे हैं। हमारे लिए डरने वाली बात यह होनी चाहिए कि इससे सामग्री की गुणवत्ता लगातार नीचे गिरती जाएगी यानी बेहतर से बेहतर बनाने की दौड़ के बजाय हम खराब से खराब सामग्री की ओर बढ़ सकते हैं।

लेकिन एक और सवाल भी है। उस तकनीकी क्रांति की कहानी का क्या होगा जो पूरे रचनात्मक वर्ग को ही अपने से दूर कर देगी ? आखिर समाज की कहानियां गढ़ने और उन्हें आकार देने का काम तो यही लोग करते हैं। यह हैरान करने वाली बात है कि एआई को लेकर आज हमारे चारों ओर गहरी चिंता का माहौल क्यों नहीं है। एआई को लेकर अस्तित्व से जुड़े डर हमारे संगीत, किताबों और टीवी कार्यक्रमों में अभी से क्यों दिखाई नहीं देते? जिस तकनीक को लेकर इतनी बड़ी आशंकाएं जताई जा रही हैं, उसका डर हमारी संस्कृति में अभी तक साफ दिखाई क्यों नहीं देता ?

एआई को लेकर आम लोगों को कहीं ज्यादा चिंतित होना चाहिए और इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि एआई को बनाने और उससे लाभ कमाने वाले लोग यानी इसके मालिक और निर्माता, खुद एआई को लेकर सबसे ज्यादा चिंतित हैं। एआई के नियमन को लेकर उनकी राय अलग-अलग हो सकती है लेकिन लगभग सभी ने इस बात पर चिंता जताई है कि एआई, खासकर ऐसा एआईजी खुद से नया एआई बना सके और अपनी ही तरह का नया तंत्र तैयार कर सके वह मानव सभ्यता के साथ पता नहीं क्या कर सकता है।

तकनीक के इतिहास में ऐसा पहले नहीं हुआ। जेम्स वॉट ने भाप के इंजन को एडिसन ने बिजली और बिल गेट्स ने पर्सनल कंप्यूटर को अस्तित्व के संकट के सवाल के साथ इसे दुनिया के सामने पेश नहीं किया था। जो लोग एआई को सबसे अच्छी तरह समझते हैं वे ही उससे सबसे ज्यादा डरते हैं। लेकिन बाकी दुनिया अब भी उससे उतनी नहीं डर रही है।



Date: 08-09-26

प्रक्रिया का प्रश्न

संपादकीय

देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों के बीच अलग-अलग मसलों पर खींचतान एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। असहमति और आलोचना लोकतंत्र की बुनियाद को और ज्यादा मजबूत ही करती है। मगर सभी पक्षों की यह कोशिश होनी चाहिए कि इस द्वंद्व की छाया कम से कम न्यायपालिका पर नहीं पड़े। विडंबना यह है कि कई बार न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर भी ऐसे टकराव सामने आते हैं, जिससे किसी खास मामले में इससे संबंधित पूरी प्रक्रिया कठघरे में खड़ी होती है। गौरतलब है कि केंद्र सरकार ने पंजाब तथा हरियाणा हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के रूप में अश्वनी कुमार मिश्रा का नाम अधिसूचित किया था। मगर पंजाब सरकार ने यह आरोप लगाया कि केंद्र ने यह कदम राज्य सरकार की राय का इंतजार किए बिना संवैधानिक नियमों तथा तय प्रक्रियाओं को दरकिनार करके उठाया। इस मसले पर अब केंद्र और पंजाब सरकार आमने-सामने हैं। टकराव की तीव्रता का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि रविवार को पंजाब मंत्रिमंडल ने इस नियुक्ति को अधिसूचित करने के केंद्र सरकार के फैसले के खिलाफ एक प्रस्ताव भी पारित किया।

जाहिर है, इस मसले पर अब यह विवाद खड़ा हो गया है कि क्या इसमें प्रक्रिया संबंधी कोई अनदेखी हुई है। हालांकि केंद्र का यह कहना है कि राज्य सरकार की राय लेना जरूरी है, लेकिन वह बाध्यकारी नहीं है। इसके बाद पंजाब सरकार के विरोध को दरकिनार करते हुए न्यायाधीश अश्वनी कुमार मिश्रा को उनके नए पद पर शपथ दिला दी गई, मगर एक बार फिर न्यायाधीशों की नियुक्ति में केंद्र और राज्य की शक्तियों को लेकर जिस तरह के सवाल खड़े हुए हैं, उन पर स्पष्टता की जरूरत है। आखिर क्या वजह है कि जहां किसी मामले में केंद्र और राज्य की सहभागिता एक लोकतांत्रिक तकाजा है, वहां कई बार खासतौर पर उन राज्यों की सरकारें खुद को उपेक्षित महसूस करती हैं, जहां विपक्षी दल सत्ता में होते हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में अगर राज्य की कोई भूमिका है, तो उसे महत्व देना लोकतंत्र को मजबूती ही देगा यों भी, इस संबंध में कोई फैसला करते हुए क्या यह ध्यान रखने की जरूरत नहीं है कि किसी राज्य की ओर से संवैधानिक अधिकारों को दबाने का आरोप न लगे या कोई अप्रिय विवाद न खड़ा हो !



Date: 08-09-26

पुलिस को सबका विश्वास जीतना चाहिए

विभूति नारायण, (राय पूर्व आईपीएस)

आज मुझे अपने एक वरिष्ठ सहकर्मी की बेतहाशा याद आ रही है, जिनके मुंह से एक वाक्य निहायत भोलेपन से निकल गया था। एक केंद्रीय पुलिस संगठन में प्रतिनियुक्ति पर आए हम कुछ अधिकारी गप्प लड़ा रहे थे कि वहां मौजूद हममें से वरिष्ठतम ने अचानक हल्के-फुल्के अंदाज में एक सवाल उछाला क्या कारण है कि जब हम सच भी बोल रहे होते हैं, तो जनता मानती है कि हम झूठ ही बोल रहे हैं? ठहाकों के बीच कई तरह के स्पष्टीकरण दिए गए, पर जैसी संभावना थी, अंत में मान लिया गया कि जिस जनता की सेवा की अपेक्षा हमसे की जाती है, समस्या उसी के साथ है। हमें बदलने की जरूरत नहीं, जनता को ही बदलना पड़ेगा। जर्मन कवि ब्रेख्त की व्यंग्य कविता की पंक्तियां याद करिए, यदि जनता राजा से संतुष्ट न हो, तो जनता को बदल दिया जाना चाहिए।

नई दिल्ली में पिछले दिनों एक आंदोलन हुआ, जो कई अर्थों में विलक्षण था। मैं सिर्फ उपरोक्त वार्तालाप के संदर्भ में इसे याद कर रहा हूं। आरोप लगाया गया कि 'कॉकरोचों' पर पुलिस ने पैलेट गन से फायर किया, पुलिस प्रवक्ताओं ने साफ इनकार कर दिया। बाद में बीबीसी समेत कई चैनलों ने अस्पतालों के दृश्य दिखाकर कई घायलों को पेश भी कर दिया, जिन्हें पैलेट गन के छर्रे लगे थे। एक मामले में तो नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी के हस्तक्षेप के चलते पुलिस को एक घायल युवा की तरफ से एफआईआर दर्ज करनी पड़ी।

इसी तरह, पुलिस लगातार दावे करती रही कि उसने बल प्रयोग किया ही नहीं, पर मुख्यधारा और सोशल मीडिया पर डंडे बरसाती और कई मामलों में कील ठुके बेंत चलाते पुलिसकर्मी दिखे। सबसे दिलचस्प तो यह हुआ कि समझौते के तहत सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय से प्रदर्शनकारियों पर दर्ज सारे मुकदमों को वापस कराने का आदेश हासिल कर लिया और

इसमें केवल उन्हें अपवाद के रूप में रखा गया, जिनके खिलाफ आपराधिक मामले पहले से दर्ज थे। पुलिस ने दावा किया कि चेहरे पहचानने वाले उनके सॉफ्टवेयर ने बहुत से ऐसे लोगों की उपस्थिति जंतर मंतर पर दर्ज की थी, जिनके खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले चल रहे हैं। राजधानी के एक अखबार ने पुलिस द्वारा जारी सूची की छानबीन की और उनमें से अनेक के घटना वाले दिन जेलों में बंद होने की तस्दीक ही कर डाली।

मैं दिल्ली पुलिस की इन हरकतों के संदर्भ में वह समझने की कोशिश कर रहा हूँ कि आखिर उसे झूठ बोलने की जरूरत क्यों पड़ी? वह ईमानदारी से स्वीकार कर सकती थी कि उसने पैलेट गन से फायर किया है। आखिर यह बंदूक तो उसे सरकार ने दी ही इसीलिए है। या बिना जांच किए जल्दबाजी में झूठा दावा करने की क्या जरूरत कि बहुत से अपराधी, जो वास्तव में उन दिनों जेल में बंद थे, धरना-प्रदर्शन के दौरान जंतर मंतर पर मौजूद थे। सबको पता है कि यह झूठ क्यों बोला जा रहा रहा है। इस प्रवृत्ति के चलते ही कई बार अदालतों में पुलिस अपनी छीछालेदर भी करा लेती है। हाल में नोएडा में एक मजदूर नेता को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत निरुद्ध करने पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में ऐसे ही अनुभव से उसे दो चार होना पड़ा है।

आदतन झूठ बोलने की वह प्रवृत्ति किसी हालिया मजबूरी से नहीं पैदा हुई है। इसकी जड़ें 1860 के बने उन कानूनों में ही निहित हैं, जिनके आधार पर एक आधुनिक संस्था के रूप में पुलिस की स्थापना हुई थी। जिन कानूनों द्वारा और जिनका पालन करने के लिए इसकी स्थापना हो रही थी, उनके अंदर ही इस संगठन के प्रति अविश्वास छिपा था। मसलन, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष दर्ज कराया गया बयान न्यायालय में परीक्षण के दौरान स्वीकार्य नहीं होता। इस बयान पर गवाह के हस्ताक्षर भी नहीं होते। झूठ की यह पूरी इमारत कैसे निर्मित होती है, इससे मेरा दिलचस्प साक्षात्कार अपनी सेवा की शुरुआत में ही हुआ। हाल में पुराने कानूनों आईपीसी, सीआरपीसी और भारतीय साक्ष्य अधिनियम में आमूल-चूल परिवर्तन किए गए हैं, पर झूठ से पुलिस का रिश्ता टूटा हो, ऐसा नहीं लगता।

साल 1977 के अविभाजित मिर्जापुर जिले के एक गांव में डकैती पड़ी थी और एक उत्सुक प्रशिक्षु के रूप में मुझे भी जिला मुख्यालय से घंटों दूर स्थित घटनास्थल पर जाने का मौका मिला। सब कुछ वैसा ही था, जैसा ऐसे किसी मौके पर उम्मीद की जा सकती थी। गरीबी से भरी झोपड़ियों वाले गांव में दो-तीन ही पक्के मकान थे, जिनको लूटा गया था। सर्दियों की अंधेरी रात में इन घरों के सदस्यों को एक कोठरी में इकट्ठा करके बंद कर दिया गया था। डकैतों के आगमन की सूचना देने वाली फायरिंग की आवाजों और इंसानी शोर-शराबे को सुनकर झोपड़ियों में रहने वाले अपने-अपने बिस्तर में दुबक गए थे। मुझसे पहले घटनास्थल पर स्थानीय थाने के कर्मी पहुंच चुके थे और तफ्तीश जारी थी। गांव में तब तक बिजली नहीं पहुंची थी अंधेरिया ठंडी रात में मुंह पर कपड़े बांधे डकैतों को पहचानने की कोई संभावना ही नहीं थी और न ही कोई गवाह इसका दावा कर रहा था।

अपने जीवन की पहली लिखी जाने वाली एफआईआर का मैं साक्षी बनने जा रहा था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब वादी पक्ष को थाने के हेड मोहरीर ने इमला बोलकर एक तहरीर लिखवाई, जिसके अनुसार गांव वालों ने डकैती के दौरान एक मड़ई फूंक दी थी और उसकी रोशनी में उन्होंने भागते डकैतों को पहचान लिया था। अनुभव शून्य भोलेपन के चलते मैंने तहरीर के विवरण पर कुछ आपत्ति प्रकट करने की कोशिश की, तो एक भोली मुस्कान के साथ बताया गया कि एफआईआर तो ऐसी ही होती है। तहरीर लिखाने वाले ने गर्व से मुस्कराते हुए कहा कि उसके लिखाए दस्तावेज पर हाईकोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक के बड़े वकील जूझते हैं।

इस अनुभव का उल्लेख मैं सिर्फ इसलिए कर रहा चूंकि दिल्ली पुलिस के बार-बार झूठ बोलने और पकड़े जाने को किसी शून्य की उपज नहीं समझा जाना चाहिए। यह एक ऐतिहासिक अनुभव संसार की उपज है। दिक्कत यह है कि एक औपनिवेशिक जरूरत के तहत निर्मित पुलिस बल के मूल चरित्र में आजादी के बाद भी कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी झूठ पुलिस की दैनदिनी का अपरिहार्य अंग है और आज भी झूठ पकड़े जाने पर कोई जिम्मेदारी तय नहीं होती।
